समकालीन भारतीय साहित्य

203
मई-जून 201

5 Years

साहित्य अकादेमी की द्वैमासिक पत्रिका
मूल्य 50 रुपये

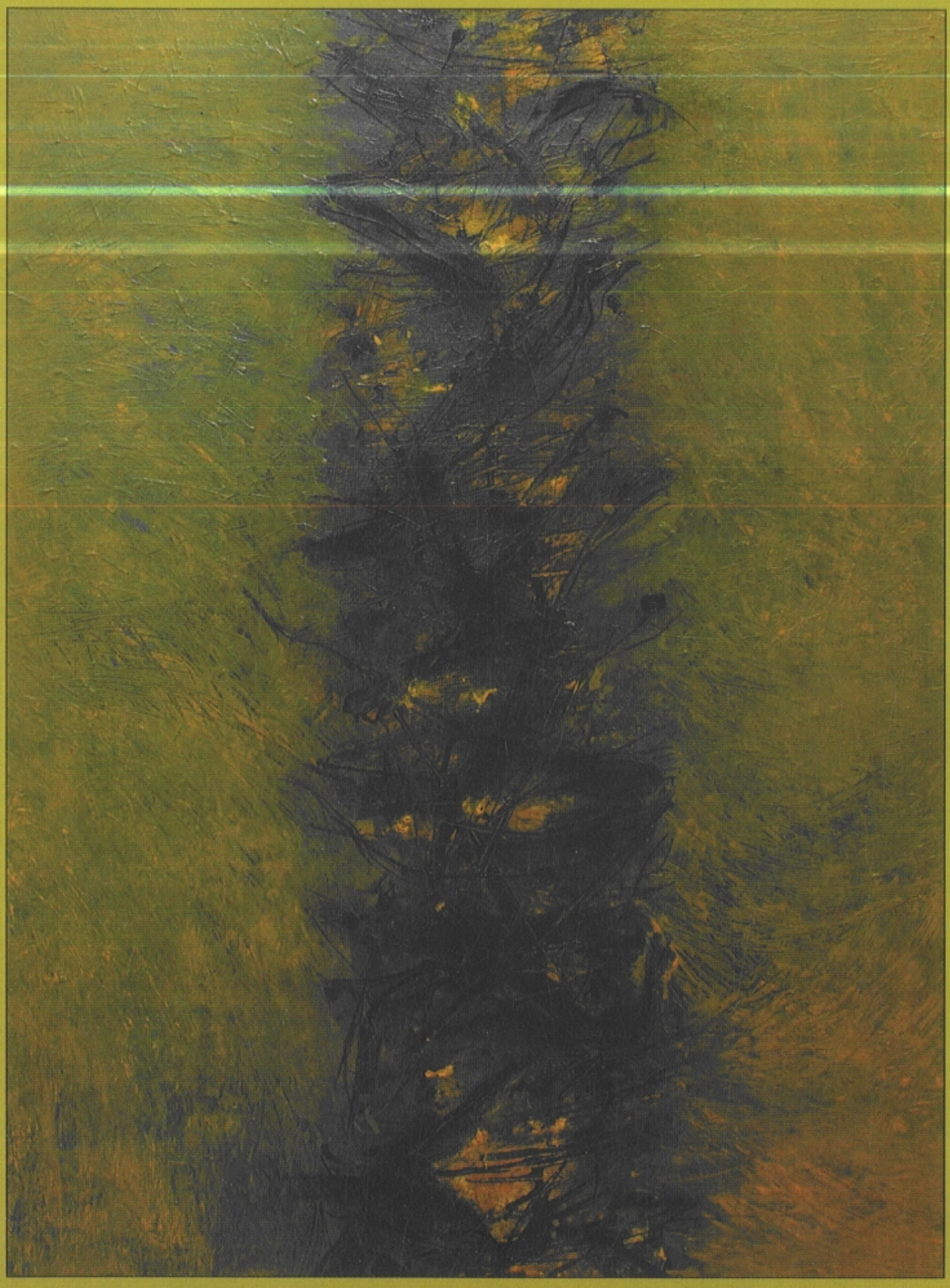

सुकृता पॉल कुमार

समय की कसक में

संपर्क : 204, मंदाकिनी एन्क्लेव, नई दिल्ली, 110019;
मो. 9818405511

अनु. रेखा सेठी। संपर्क: 2ए, यमुना रोड, पहली मंज़िल, सिविल लाइन्स, दिल्ली–110054;
मो. 9810985759

कैलेंडर भनभनाता है
मेरे कानों के आस–पास
और हमारी लॉबी की घड़ी का पेंडुलम
झूलता रहता लगातार
क्या आज रविवार है ?
या सोमवार ?
क्या तारीख़ है ?
समय क्या ?

जंग नहीं लगा है लोहे की बेड़ियों में
या फिर हम ही
चमकाते रहते हैं उन्हें हरदम
चाँद पूरा निस्तेज हो गया है
बदल गई हैं घने झंखाड़ में
सपनीली सड़कें
लेकिन अभी
उसे टोहना भी शुरू नहीं किया
बादल गुज़र गए
पीछे छोड़
अपनी दरारें
मेरा दिल
इन गहराइयों को भरने के लिए
कुलाँचे मारता उछलता है

और अब
जब वो भरी-पूरी हैं
परितृप्त
मेरा हृदय
ख़ाली और शून्य।

सूर्योदय रँगते हुए

कोयले की काली स्याही
घुलती जाती
गाढ़े नीले रंग में

किनारे-किनारे
गहराइयाँ तराशती
धरती-आकाश के बीच
क्षितिज

एक-दूसरे पर ठहरी
सिल्लियाँ

ख़ामोश लयात्मक दस्तक

रंगीन स्कर्ट की तहों-सी
चटकती दीवारें
जो उठतीं और चल पड़तीं
एक लंबे थिरकते पैर के पीछे

दरारों और सेंधों के बीच झाँकतीं
हज़ार-हज़ार बाँहें
उगते हुए
चमकीले रंगों को
भर लेतीं बाँहों में

पुराने दोस्त
(माँ के लिए)

पुराना पेन स्टैंड वैसा ही है
दसियों सालों से सीधा खड़ा है
तैयार और सावधान
लेखक की क़लम साधे
उसके द्वारा उठाए जाने के इंतज़ार में
जिसकी धमनियों का रक्त
स्याही है उसकी
आँसू रवानगी
और ख़ुशी उसकी ताक़त

उसकी लंबी-पतली रीढ़ में कुलबुलाहट
जुनून, दर्द और पीड़ा के साए
धीरे-से उभर आए हैं काग़ज़ पर
आड़े-तिरछे रेंगते दाएँ से बाएँ
चरित्र, विचार, भाव और बाक़ी सब
स्वयं को परिभाषित करते
जैसे कि ईश्वर के अपने हाथों में
जन्मते-मरते हुए
समानांतर इक संसार में
अर्ध-चंद्र-सी तिरछी
उर्दू ज़बान में लिखी
आकाशगंगा-सी इबारतें

आज भी
कमरे के बीचों-बीच स्थापित है
अपनी दरारों से पीली धूल उड़ाती

क़लमदान में उसी तरह रखी है क़लम
निस्पंद
स्याही के सूखकर जम जाने से

क़लम का मालिक भी
सिकुड़ रहा उम्र के साथ
उसकी धमनियों का रक्त
खो चुका हो रवानगी जैसे
एक-दूसरे के प्रति हमदर्दी में।

सर्जना के तनाव में

रचने की प्रक्रिया में
मैं हरदम अपने से आगे ही रहती हूँ
पीछे मुड़कर देखने को कुछ भी नहीं

बाक़ी बचे वक़्त में
मैं अपना ही पीछा करती हूँ
आगे देखने को कुछ भी नहीं

मुद्दा सिर्फ़
क़दमताल बनाए रखने का है...

दायरे के बाहर

इस संसार में
बसे हैं और भी संसार
सितारों के पार
मुझे पता ही नहीं था

आसमान के नीलेपन को
कभी बींधा ही नहीं मैंने
न ही कभी पेड़ों की पंक्ति
के ऊपर फैली जामुनी चट्टानों
पर चढ़कर चली

कभी किसी अनाथ आँखों की
गहराइयों में डूबकर भी नहीं देखा
नहीं महसूस किया
बालू-से खुरदरे
स्नेह-रिक्त बचपन को

फूलों की घाटी तक पहुँचानेवाली
ख़ुशबू कहाँ थी

क्यों नहीं सुना मैंने वह सन्नाटा
जो गूँजता रहा शंख के खोखल में

मुझे लगा कि सब कह दिया
सब सुन लिया मैंने
कहानियाँ-पीड़ा और सुक़ून की,
प्यास और कामना की

जब तक कि तुम नहीं आईं मेरी दोस्त
और तुमने वह सब नहीं कहा,
सुनाई तुमने कहानी अपने प्रेम की
खोल दिया उसका रहस्य

सबसे पहले
साहस किया तुमने
ख़ुद अपने को कहने का
अटल विश्वास की चमक से
झलमलाती बेचैनी के साथ
सब कहा तुमने
निर्मम संकल्प का वह कंपन
भरा था जो अनजाने भय से

तुम्हारा, एक स्त्री होकर
चाहना
एक स्त्री को

सभी लक्ष्मण रेखाएँ पार कर
क़ैद सोच के ताले खोल
उड़ जाते हैं परिंदे जैसे

अभेद्य सीमाओं के पार
अभियोग या जीवन की
परवाह किए बिना

शब्दों की क़ब्र में दफ़न सच्चाई के अंश
समुद्र की गहराइयों में बंद तिजोरियों से
उठे ऐसे, जैसे जुगनू
जीवन के अँधेरे किनारों को
जगमगाते हुए।